ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-I* Issue-VI* September-2016
Anthology : The Research

भारतीय शिव संकल्पना भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख का मूल

प्रहलाद सहाय बलाई
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय,
चिमनपुरा,जयपुर

सारांश

"मनः सर्व विकारात्मा "[1]

यह भागवतकार का कथन "न मिथ्या ऋषि भाषितम् " इस महर्षि वाल्मीकि जी के कथन तथा "मिथ्या होई न ऋषि की वाणी "इस तुलसी दासोक्तानुसार पूर्णतः सत्य है, ऐसा कहा जा सकता है । सभी विकारों से संवलित मन के विकार को किस प्रकार निर्विकार किया जा सकता है, पर मैं किंचित विचार प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

यजुर्वेद के 34/1 अध्याय में छ मंत्र शिव संकल्प की बात को कहते हैं।

मुख्य शब्द : शिव संकल्पना भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख

प्रस्तावना

"तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु "[2]

अर्थात् वह मेरा मन समीचीन संकल्प वाला हो । इस ऋषि प्रोक्त मंत्र से हमें यह ज्ञात होता है कि इस मंत्र के द्रष्टा ऋषि मन की अशिवता से भली भॉति परिचित हैं। स्वयं खिन्न हैं और समाज की खिन्नता का भी उन्हें आभास है। अतः वे एक दो बार नहीं छ बार मानस शिवसंकल्पना को अभिव्यक्त करते हैं। यजुर्वेद के छटवें ही अध्याय में आदि कहकर ऋषि पुनः मानस तर्पणता के लिए प्रयत्नशील हैं।

"मनो में तर्पयत् " वाचं में तर्पयत्[3]

गीता में मन के लिए आत्मा शब्द का प्रयोग यादव वंशावतंस वासुदेव करते हैं, "प्रसन्नात्मां" प्रसन्नता का सम्बन्ध मात्र मन से है, यह नहीं कह सकते हैं, क्योंकि मन प्रसन्नता का मात्र साधन है।

सुखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः[4]

ब्रह्म का तटस्थ लक्षण शास्त्रों ने "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" किया है। उपनिषद् "रसो वै सः" कहकर ब्रह्म की रसता अर्थात् सुखता को प्रदर्शित करते हैं। रस आनन्द व सुख का वाचक है। विशुद्वात्मा कहकर आत्मा की शुद्वता पर प्रश्न उठाना ठीक नहीं, क्योंकि आत्मा पूर्णतः विशुद्ध है, अतः विशुद्धात्मा भी मन के लिए ही है। सात्विक मन शिव संकल्पवान् होता है। "रजस्तमोभ्यामस्पृष्टम् मनः सत्वमिहोच्यते" मन को सत्व स्वान्तं हृत् मानसम् आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। पर्याय शब्द वास्तविक अर्थ को नहीं कहते हैं। वे केवल मूल शब्द के आस–पास विचरण करते है। अतः उनका विचार यहॉ लक्ष्य नहीं है। सत्वता का निरूपण 'प्रकाशकता' और लघुता से है। सतोगुणी मन ज्ञानात्मक व लघु होता है, वहीं सत्संकल्प बनकर हमें सन्मार्ग पर लाता है। कठोपनिषद मन को लगाम की संज्ञा देता है। बिना लगाम के अश्व रथ को कहीं भी गिरा सकता है, अतः मनोनिग्रह के बिना हमारा कल्याण नहीं हो सकता । तुलसीदास के शब्दों में भगवान राम कहते है "निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा"। परमात्म प्राप्ति का साधन मात्र निर्मल मन ही हैं वेद इस निर्मलता को ही शिव संकल्प शब्द से अभिहित करता है।

"समाना हृदयानि वः समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति"[5]

इस पंक्ति में ऋग्वेद यह कहकर मन की शिव संकल्पता को ही व्यक्त कर रहा है।

"इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपि यतेर्मनः"[6]

कहकर भागवतकार यति के मन को भी हरण करने की बात को कहते हैं। अतः भगवान श्री कृष्ण कहकर मन को ईशार्पण करने की बात कहते है कि मन मुझे दे दो ।

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू"[7]

कि मन मुझे दे दो । ईश्वर को केवल पवित्र मन चाहिए और कुछ नहीं । हम इस मन को ईश्वरार्पण नहीं करके व्यर्थ में विकृत होने देते हैं। अतः उक्ति में कहा गया है " तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा "। मन का सम्बंध तृष्णा से है। मन की पवित्रता अर्थात शिवता पर कबीर जी भी अपने विचार प्रकट करते है।

माया मरी न मन मरा मर मर गया शरीर ।
आशा तृष्णा न मरी कह गये दास कबीर।।

भागवतकार महर्षि वेदव्यास जी भागवत् में सुख दुख का हेतु मन को ही मानते हैं और संसार चक्र के परिवर्तन में भी इसी को स्वीकारते हैं –

नायं जनो मे सुख दुःख हेतुः
न देवतात्मा ग्रहकर्म कालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति
संसार चक्रं परिवर्तयेद् यद्।।[8]

इस मन को नियन्त्रित करने वाली बुद्धि है। बुद्धि का कार्य विवेक द्वारा ग्राह्याग्राह्य व कार्याकार्य आदि का निश्चय करना है। मन का निग्रह विराग पूर्वक अभ्यास से ही सम्भव है, ऐसा गीता में कहा गया है।

"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येन च गृह्यते।।"[9]

सतत यौगिक अभ्यास और संसार के प्रति उदासीनता से मन को वश में करके हम मानव जीवन की सफलता को अर्जित कर सकते हैं। गीता में यहॉ तक कहा गया है कि वह व्यक्ति इस सृष्टि को यहीं जीत लेता है, जिसका मन समता में स्थिर है अर्थात् जो सभी में समबुद्धि रखता है।

"इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः"[10]

साम्य को भी ब्रह्म की संज्ञा दी गई है–

"निर्दोषं हि समं ब्रह्म"[11]

गीता में मन की साम्य अवस्था को ब्रह्म कहा गया हैं ।

"शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता : समदर्शिनः"[12]

यह गीतोक्त कथन सभी समस्याओं का निदान करने में समर्थ है, क्योंकि समता से व्यावहारिक शुद्धि होती है। यहीं से समरसता का भाव सर्वत्र फैलता है। यह भाव "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्", वसुधैव कुटुम्बकम्" को सार्थक बनाता है। अतः सम्पूर्ण लेख का सार केवल मन की शिवसंकल्पता में निहित है। जो 'विश्व भवत्येक नीडम्' को सफल बना सकता है। किसी महापुरूष की यह उक्ति निश्चित रूप से स्वीकार्य हो सकती है। मनसा, वाचा और कर्मणा जो सदा एक रस बना रहता है, वही महान् व्यक्तित्व होता है।

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्"

यह तभी सम्भव है, जब हम सभी के साथ समता का व्यवहार करते हैं। समता और निर्दुष्टता महाभारत के अनुसार परमात्मा का लक्षण है।

"निर्दोषं हि समं ब्रह्म "[13]

निर्दुष्टता और समता ये दोनों कठिन हैं । मन का चांचल्य प्रबल वायुवेग की तरह है, जिसका अवरोध सम्भव नहीं है। पर "योग दर्शन" का जन्म इसके चांचल्य को रोकने के लिए ही हुआ है। अतः योग का लक्षण करते हुए महर्षि पतंजलि चित्तवृत्ति को एकाग्र और व्यवस्थित करने को ही योग कहते हैं। यहॉ चित्त मन के लिए ही व्यवहृत है।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"[14]

इस दुःखानन्त का समाधान करते हुए भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि उचित आहार ,विहार ,शयन,जागरण शारीरिक दुःखों का तथा उचित व्यवहार मानस दुःखों का नाश करता है।

मुक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[15]

समस्त श्लोक का भाव केवल मनुष्यों के आनन्द में निहित है, आनन्द का साधन मन है अतः मन की शिव संकल्पता, जो वैदिक उद्घोष है, उसी में निहित है। इसी से समता सम्भव है। समता ही शिवता है।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।[16]

सुख–दुःख,लाभ–अलाभ तथा जय पराजय में समान बने रहना यौगिक विधि है, जो सभी से सम्भव नहीं है, पर यह असम्भव भी नहीं है। श्रीकृष्ण इसका स्वयं उदाहरण हैं। शास्त्रों में कई ऋषि, यति और संत उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं। इसके लिए योग का साक्षात्कार करना आवश्यक है। यदि किसी को परमात्मा के यहॉ से स्वतः स्फूर्त स्वभाव मिला है, तो वह एक रस बना रह सकता है ब्रहमानन्द का अनुभव उक्त एक रस व्यक्ति को ही सम्भव है। भौतिक सुख को सर्वस्व समझने वाला ब्रह्मानन्द से सदा विरहित ही रहेगा । आज मानसिक विह्वलता से मानव आग से घिरे हुए व्यक्ति के समान दुःखों से लिपटा हुआ है। भ्रम वश उस दुःख को ही सुख समझ रहा है। और तृष्णा की मृगमरीचिका के जाल में फॅसकर जीवनानन्द से रहित होकर जीते हुए भी जी नहीं रहा है।

उद्देश्य

इसका सम्पूर्ण उद्देश्य मानस शिव संकल्पता ही है, जो वैदिक विधानानुसार ही सभी परवर्ती शास्त्रों में वर्णित हुआ है। आज की समस्या दुःखों का वैविध्य है। इसका नाश ही ऋषियों ,मुनियों, यतियों, सद्गृहस्थों , शास्त्रों ,कवियों आदि सभी का उद्देश्य है।

निष्कर्ष

अतः हमें शान्ति व सौख्य के लिए मानस शिव संकल्पता की ओर चलना चाहिए और समस्त विश्व को इस ओर ध्यान दिलाना चाहिए। यदि अंश मात्र भी शिव संकल्प विश्व में आ जाए तेा विश्व का त्राण सम्भव है। जैसे समस्त विश्व को रासायनिक अग्नि की एक चिंगारी नष्ट कर सकती है, उसी प्रकार वैदिक शिव संकल्पना समस्त जगत् को शान्ति रूप बना सकती है। इसी को यजुर्वेद में "तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु " कहा गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. *श्रीमद्भागवत् पुराण 10–1–42*
2. *यजुर्वेद 34–1 से 6*
3. *यजुर्वेद 6–31*
4. *तर्क संग्रह 1–9*
5. *ऋग्वेद 10–191–4*
6. *श्रीमद् भागवत् पुराण 7–12–7*
7. *श्रीमद् भागवत गीता 9–34*
8. *श्रीमद् भागवत पुराण 11–23–43*
9. *श्रीमद् भागवत गीता 6–35*
10. *श्रीमद् भागवत गीता 5–19*

11. श्रीमद् भागवत गीता 5–19
12. श्रीमद् भागवत गीता 5–18
13. श्रीमद् भागवत गीता 5–19
14. योग दर्शन 1–2
15. श्रीमद् भागवत गीता 6–17
16. श्रीमद् भागवत गीता 2–38